More Ebooks:http://vinitaa.shah.googlepages.com
Edited by Foxit Reader
Copyright(C) by Foxit Software Company,2005-2006
For Evaluation Only.

Premchand

Sawa Ser Ghehu

Chapter 1

DV

किसी गाँव में शंकर नाम का क कुरमी किसान रहता था । सीधा-सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम न किसी के लेने में न देने में । छक्का पंजा न जानता था ; छल प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिन्ता न थी, ठग विद्या न जानता था। भोजन मिला खा लिया न मिला चबेने पर काट दी, चबेना न मिला तो पानी पी लिया, और राम का नाम लेकर सो रहा। किन्तु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था तो उसे इस निवृति मार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेष कर जब साधु महात्मा पदार्पण करते थे तो उसे अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था पर साधु को कैसे भूखा सुलाता ? भगवान के भक्त ठहरे ?

क दिन संध्या के समय क महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर , पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, `नक आँखों पर । संपूर्ण वेश उन महात्माओं का-सा था जो रईसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योगसिद्धि प्राप्त करने के लि रूचिकर भोजन करते हैं। घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता, प्राचीन काल में जौ का चाहे जो कुछ महत्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरूषों के लि दुष्पाच्य होता है। बड़ी चिंता हुई, महात्मा जी को क्या खिलाऊँ। आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेंहूँ का आटा उधार लाऊँ, पर गाँव भर में गेंहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य थे, देवता क भी न था, अतः देवताओं का पदार्थ कैसे मिलता ?

सौभाग्य से गाँव के विप्र महाराज के यहाँ से थोड़े से गेंहूँ मिल गये। उसने सवा सेर गेंहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दे। महात्मा जी ने भोजन किया, लम्बी तान कर सोये। प्रातःकाल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

विप्र महाराज साल में दो बार खलिहानी किया करते थे। शंकर ने दिल में कहा-सवा सेर गेंहूँ
इन्हें क्या लौटाऊँ, पसेरी के बदले कुछ ज्यादा खलिहान दे दूँगा, यह भी समझ जायेंगे, मैं भी समझ जाऊँगा। चैत में जब विप्र जी पहुँचे तो उन्हें डेढ़ पसेरी के लगभग गेंहूँ दे दिया। और अपने को उ

ण समझ कर उसकी कोई चरचा न की । विप्र जी ने फिर कभी न माँगा। सरल शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेंहूँ चुकाने के लि उसे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।

सात साल गुजर गये। विप्र जी विप्र से महाजन हु, शंकर किसान से मजूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। क साथ रह कर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गये थे। शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाये, किन्तु परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया।

जिस दिन अलग-अलग चूल्हे जले, वह फूट-फूट कर रोया। आज से भाई-भाई शत्रु हो जायँगे, क रोयेगा तो दूसरा हँसेगा, क के घर में मातम होगा तो दूसरे के घर में गुलगुले पकेंगे। प्रेमं का बंधन, खून का बंधन, दूध का बंधन आज टूटा जाता है। उसमें भगीरथ परिश्रम से कुलमर्यादा का वृक्ष
लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था, उसको जड़ से उखड़ता देखकर उसके हृदय के टुकड़े हु जाते थे। सात दिनों तक उसने दाने की सूरत तक न देखी। दिन भर जेठ की धूप में काम करता और रात को मुँह लपेट कर सो रहता। इस भीषण वेदना और दुस्सह कष्ट को रक्त को जला दिया, माँस और मज्जा को घुला दिया। बीमार पड़ा तो महीनों तक खाट से न उठा। अब गुजर बसर कैसे हो ? पाँच बीघे के आधे खेत रह गये, क बैल रह

गया, खेती क्या खाक होती। अंत को यहाँ तक नौबत पहुँची कि खेती केवल मर्यादा रक्षा का साधन मात्र रह गयी। जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा।

सात वर्ष बीत गये, क दिन शंकर मजूरी करके लौटा तो राह, में विप्र जी ने टोक कर कहा-शंकर, कल आके अपने बीज बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यहाँ साढ़े पाँच मन गेहूँ कब के बाकी पड़े हु हैं और तू देने का नाम नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या ?

शंकर मे चकित होकर कहा-मैंने तुमसे कब गेंहूँ लि थे जो साढ़े पाँच मन हो गये ? तुम भूलते हो, मेरे यहाँ किसी का न छटाँक भर अनाज है न क पैसा उधार।

विप्र--इसी नीयत का तो यह फल भोग रहे हो कि खाने को नहीं जुड़ता।

यह कहकर विप्र ने उस सवा सेर का जिक्र किया, जो आज से सात वर्ष पहले शंकर को दिया था। शंकर

सुनकर अवाक् रह गया। ईश्वर ! मैंने इन्हें कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन सा काम किया ? जब पोथी-पत्रा देखने साइत-सगुन विचारने द्वार पर आते थे, कुछ न कुछ दक्षिणा ले ही जाते थे। इतना स्वार्थ ! सवा सेर अनाज को अंडे की भाँति से कर आज यह पिशाच खड़ा कर दिया, जो मुझे निगल जागा। इतने दिनों में क बार भी कह देते तो मैं गेंहूँ तौल कर दे देता, क्या इसी नीयत से चुप बैठे रहे । बोला--महाराज नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानी में सेर-सेर दो-दो सेर दिया है। अब आप साढ़े पाँच मन माँगते है, मैं कहाँ से दूँगा ?

विप्र-लेखा जौ-जौ बखसी सौ-सौ ! तुमनें जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं। चाहे क की जगह चार पसेरी दे दो। तुम्हारे नाम बही में साढ़े पाँच मन लिखा हुआ है जिससे चाहो हिसाब लगवा लो। दे दो तो तुम्हारा नाम छेंक दूँ, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।

शंकर -पांड़े, क्यों गरीब को सताते हो, मेरे खाने का ठिकाना नहीं इतना गेंहूँ किसके घर से लाऊँगा?

विप्र- जिसके घर से चाहो लाओ, मैं छटाँक भर न छोड़ूँगा, यहाँ न दोगे, भगवान के घर दोगे।

शंकर काँप उठा। हम पढ़े लिखे आदमी होते तो कह देते अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे। वहाँ की तौल यहाँ से कुछ बड़ी तो न होगी। कम से कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। किन्तु शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार चतुर न था। क तो

ण - वह भी ब्राह्मण का - बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊँगा, इस ख्याल से उसे रोमांच हो आया। बोला- महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दें, इस जनम में तो ठोकर खा ही रहा हूँ, उस जनम के लि क्यों बोऊँ। मगर यह कोई नियाव नहीं है। तुमने राई का पर्वत बना दिया, ब्राम्हण होके तुम्हें `सा नहीं करना चाहि था। उसी घड़ी तगादा करके ले लिया होता, तो आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझ क्यों पड़ता ? मैं तो दूँगा लेकिन तुम्हें भगवान के यहाँ जवाब देना पड़ेगा।

विप्र-वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई-बंधु हैं।

षि-मुनि सब तो ब्राह्मण ही हैं, देवता भी ब्राह्मण हैं, जो कुछ बने बिगड़ेगी, सँभाल लेंगे। तो कब देते हो ?

शंकर-मेरे पास रखा तो नहीं, किसी से माँग-जाँच कर लाऊँगा तभी न दूँगा !

विप्र - मैं यह न मानूँगा । सात साल हो गये, अब क दिन का भी मुलाहिजा न करूँगा। गेंहूँ

नहीं दे सकते ,दस्तावेज लिख दो।

शंकर- मुझे तो देना है, चाहे गेंहूँ लो, चाहे दस्तावेज लिखाओ। किस हिसाब से दाम

रखोगे ?

विप्र- बाजार भाव पाँच सेर का है, तुम्हें सवा पाँच सेर का काट दूँगा।

शंकर- जब दे ही रहा हूँ तो बाजार-भाव काटूँगा, पाव भर छुड़ाकर क्यों दोषी बनूँ।

हिसाब लगाया तो गेंहूँ का दाम साठ रूपये हु। साठ रूपये का दस्तावेज लिखा गया, तीन रूपया सैकड़े सूद। साल भर में न देने पर सूद का दर साढ़े तीन रूपये सैकड़े बारह आने का स्टाम्प, क रूपया दस्तावेज की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी।

गाँव भर ने विप्र जी की निन्दा की, लेकिन मुँह पर नहीं । महाजन से सभी को काम पड़ता है, उसके मुँह कौन आये।

शंकर ने साल भर कठिन तपस्या की। मीयाद के पहले रूपया अदा करने का उसने व्रत-सा कर लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबेने पर बसर होती थी, अब वह भी बंद हुआ। केवल लड़के के लि रात को रोटियाँ रख दी जातीं। पैसे रोज का तम्बाकू पी जाता था । यही क व्यसन था जिसका वह कभी त्याग न कर सका था। अब व्यसन भी इस कठिन व्रत के भेंट हो गया । उसने चीलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तम्बाकू की हाँड़ी चूर-चूर कर डाली। कपड़े पहले ही त्याग की सीमा तक पहुँच चुके थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्ध हो गये। शिशिर की अस्थि-वेधक शीत को उसने आग ताप कर काट दिया। इस ध्रुव संकल्प का फल आशा से बढ़ कर निकला। साल के अन्त में उसके पास साठ रूपये जमा हो गये। उसने समझा, पण्डित जी को इतने रूपये दे दूँगा और कहूँगा, महाराज, बाकी रूपये भी जल्द ही आपके सामने हाजिर करूँगा। पन्द्रह रूपये की तो और बात है, क्या पंडित जी इतना भी न मानेंगे ? उस ने रूपये लि और ले जाकर पंडित जी के चरण-कमलों पर अर्पण कर दिये। पंडित जी ने विस्मित

होकर पूछा-किसी से उधार लिये क्या ?

शंकर- नहीं महाराज, आपके आसीस से अबकी मजूरी अच्छी मिली।

विप्र- लेकिन यह तो साठ रूपये ही हैं।

शंकर-- हाँ, महाराज, इतने अभी लीजि बाकी दो-तीन महीने में दूँगा, मुझे उरिन कर

दीजि।

विप्र - उरिन तो तभी होगे जब मेरी कौड़ी-कौड़ी चुका दोगे। जाकर मेरे पन्द्रह रूपये और लाओ।

शंकर - महाराज, इतनी दया करो, अब साँझ की रोटियों का भी ठिकाना नहीं है, गाँव में हूँ तो कभी न कभी दे ही दूँगा।

विप्र - मैं यह रोग नही पालता, न बहुत बातें करना जानता हूँ। अगर पूरे रूपये न मिलेंगे तो आज से साढ़े तीन रूपये सैकड़े का ब्याज लगेगा। अपने रूपये चाहे अपने घर में रखो, चाहे मेरे यहाँ छोड़ जाओ।

शंकर - अच्छा जितना लाया हूँ उतना रख लीजि। जाता हूँ, कहीं से पन्द्रह रूपये और लाने की फिक्र करता हूँ।

शंकर ने सारा गाँव छान मारा, मगर किसी ने रूपये न दिये, इसलि नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रूपया न था, बल्कि इसलि कि पंडित जी के शिकार को छेड़ने की किसी में हिम्मत न थी।

क्रिया के पश्चात् प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है। शंकर साल भर तक तपस्या करने पर जब

ण से मुक्त होने में सफल न हो सका तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणित हो गया। उसने समझ लिया कि जब इतना कष्ट सहने पर भी साल भर में साठ रूपये से अधिक जमा न कर सका तो अब और कौन सा उपाय है जिसके द्वारा उससे दूने रूपये जमा हों। जब सिर पर

ण का बोझ ही

लदना है तो क्या मन का और क्या सवा मन का। उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो

गयी। आशा उत्साह की जननी है, आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक

शक्ति है। शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया। वह जरूरतें जिनकों उसने साल भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खड़ी होने वाली भिखारिणी न थीं, बल्कि छाती पर सवार होने वाली पिशाचिनियाँ थीं जो अपने भेंट लियें बिना जान नहीं छोड़तीं। कपड़ों में चकतियों के लगने की भी क सीमा होती है। अब शंकर को चिट्ठा मिलता तो वह रूपये जमा न करता। कभी कपड़े लाता, कभी खाने को कोई वस्तु । जहाँ पहले तमाखू ही पिया करता था, वहाँ अब गाँजे और चरस का भी चस्का भी लगा। उसे अब रूपये अदा करने की कोई चिन्ता न थी मानों उसके ऊपर किसी का पैसा नहीं आता। पहले जूड़ी चढ़ी होती थी, पर वह काम करने अवश्य जाता था। अब काम पर न जाने के लि बहाना खोजा करता।

इस भाँति तीन वर्ष निकल गये। विप्रजी महाराज ने क बार भी तकाजा न किया। वह चतुर शिकारी की भाँति अचूक निशाना लगाना चाहते थे। पहले से शिकार चौंकाना उनकी नीति के विरूद्ध था।

क दिन पंडित जी ने शंकर को बुला कर हिसाब दिखाया। साठ रूपये थे जो जमा थे वह मिनहा करने पर शंकर के जिम्मे क सौ बीस रूपये निकले।

शंकर- इतने रूपये तो उसी जन्म में दूँगा, इस जन्म में नहीं हो सकते।

विप्र - मैं इसी जन्म में लूँगा। मूल न सही, सूद तो देना ही पड़ेगा।

शंकर क बैल है, वह ले लीजि ; क झोपड़ी है, वह ले लीजि और मेरे पास क्या रखा है?

विप्र- मुझे बैल-बधिया ले कर क्या करना है । मुझे देने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

शंकर - और क्या है महाराज ?

विप्र - कुछ नहीं है तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मजूरी करने जाते ही हो। मुझे भी खेती के लि मजूर रखना पड़ता है। सूद में हमारे यहाँ काम किया करो, जब सुभीता हो

मूल दे देना। सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक मेरे रूपये नहीं चुका दो। तुम्हारे पास कोई जायदाद नहीं है, इतनी बड़ी गठरी मैं किस तबार पर छोंड़ दूँ। कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने-महीने सूद देते जाओगे ? और कहीं कमा कर अब तुम मुझे सूद भी

नहीं दे सकते, तो मूल की कौन कहे ?

शंकर - महाराज, सूद में तो काम करूँगा और खाऊँगा क्या ?

विप्र - तुम्हारी घर वाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ पाँव कटा के बैठेंगे। रहा मैं तुम्हें आध सेर जौ रोज कलेवा के लि दे दिया करूँगा। ओढ़ने को साल में क कम्बल पा जाओगे, क मिरजई भी बनवा दिया करूँगा, और क्या चाहि ? यह सच है कि और लोग तुम्हें छः आने रोज देते हैं लेकिन मुझे `सी गरज नहीं है, मैं तो तुम्हें अपने रूपये भराने के लि रखता हूँ।

शंकर ने कुछ देर तक गहरी चिंता में पड़े रहने के बाद कहा- महाराज, यह तो जन्म भर की गुलामी हुई।

विप्र - गुलामी समझो, चाहे मजूरी समझो। मैं अपने रूपये भराये बिना तुमको कभी न छोड़ूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। हाँ, जब कोई न रहेगा तब की दूसरी बात है।

इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजूर की जमानत कौन करता ? कहीं शरण न थी, भाग

कर कहाँ जाता ? दूसरे दिन उसने विप्र जी के यहाँ काम करना शुरू कर दिया। सवा सेर गेंहूँ की बदौलत उम्र भर के लि गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को अब अगर किसी विचार से संतोष होता था तो यह था कि यह मेरे पूर्वजन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे, जो उसने कभी न किये थे, बच्चे दानों को तरसते थे,

लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा और कुछ न कर सकता था। गेंहूँ के दाने किसी देवता के शाप की भाँति आजीवन उसके सिर से न

उतरे।

शंकर ने विप्र जी के यहाँ बीस वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। क सौ बीस रूपये अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पण्डित जी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा। इतने अन्यायी नहीं, इतने निर्दय वे न थे। उसके जवान बेटे की गर्दन पकड़ी । आज तक वह विप्र जी के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जानें।

पाठक, इस वृत्तांत को कपोलकल्पित न समझि। यह सत्य घटना है।`से शंकरों और`से विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।